International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(5): 202-205

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(5): 202-205
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-07-2020
Accepted: 19-09-2020

डॉ. कृपाशङ्करशर्मा
असि. प्रोफ़ेसर, साहित्यविभाग,
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय,
श्रीरघुनाथकीर्तिपरिसर, देवप्रयाग, उत्तराखंड,
भारत

Corresponding Author:
डॉ. कृपाशङ्करशर्मा
असि. प्रोफ़ेसर, साहित्यविभाग,
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय,
श्रीरघुनाथकीर्तिपरिसर, देवप्रयाग, उत्तराखंड,
भारत

नाट्यशास्त्र की परम्परा में दशरूपक का महत्त्व एवं प्रासङ्गिकता

डॉ. कृपाशङ्करशर्मा

सारांश-
प्रस्तुत शोध आलेख नाट्यशास्त्रीयपरम्परा में दशरूपक का महत्त्व एवं प्रासंगिकता शीर्षक पर केन्द्रित होकर लिखा गया है इसमें मुख्यरूप से नाट्य के उपयोगी तत्त्वों को यथासन्दर्भ उपस्थापित किया गया है जिसमें पञ्चसन्धि पञ्च अर्थप्रकृति नायक स्वरूप भेद नायिका के प्रकार और विशेषता तथा पात्राभिय में प्रयुक्तभाषा सम्बोधन् आदि का विचार प्रतिपादन किया गया है, जो नाट्यकर्मियों और तद्वत् रचनाकारों के लिये मार्ग प्रशस्त करने वाला सिद्ध होगा इस् प्रकार की अभिलाषा व्यक्त की जा सकती है और साथ ही नाट्यशास्त्र के धरातल पर अपने महत्त्व और प्रासंगिकता को उद्घाटित करता है यह निष्कर्ष सारांश के रूप में मान्य है।

कूट शब्द: नाट्यशास्त्र, प्रासंगिकता शीर्षक, दशरूपक

प्रस्तावना
नाट्यशास्त्र साहित्य संस्कृति कला का अभिराम एवं प्रयोगप्रधान कलासंगम का ग्रन्थ है। कला के देवता नटराज शिव हैं और देवी सरस्वती मानी जाती है। कलासाधक इनके कृपाप्रसाद से अपनी कला का प्रकाशन करता है। वेदों के सारतत्त्व को ग्रहण कर नाट्यशास्त्र का निर्माण आचार्यभरतमुनि की सारस्वतसाधना का प्रतिफल है। इसी परम्परा को 'पञ्चमो नाट्यवेद:' कहकर महत्त्व प्रकाशित किया जाता है। नाट्यशास्त्रपरम्परा का उद्गम वेदों से ही माना जाता है। पञ्चमवेद के रूप में नाट्यशास्त्र भारतीय नाट्यकला के प्रयोग का प्रातिस्विक विचार प्रतिपादक होकर सहृदय के अन्त:करण में रससंचार की प्रक्रिया का उद्भावक माना जाता है। इसी तारतम्य में धनञ्जय के द्वारा रचित नाट्यपरम्परा का उपयोगी शास्त्रीय ग्रन्थ दशरूपक है जो कुशीलवो के लिये नवोन्मेषी मार्ग प्रशस्त करने वाला सिद्ध हो सकता है। यहाँ दशरूपक के स्वरूप पर चर्चा करते हुए इसके महत्व और प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला जा रहा है।

दशरूपक का स्वरूप: -
दशरूपक रचनाकार आचार्य धनञ्जय है। इनका समय अभिनवगुप्त के समकालीन दशवी शती का अन्त एवं ग्यारहवी शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है। दशरूपक नाट्यशास्त्र का सार रूप है इसमें नाट्य के दशरूपों का उल्लेख और विषयवस्तु का विधिवत निरूपण हुआ है। चार अध्यायों में नाट्यतत्त्वों का विवेचन कर अध्याय को प्रकाश नाम से संज्ञित किया गया है। प्रकाश का अर्थ है रोशनी उजाला जिसे अग्रेजी में लाईट कहा गया है। किसी विषय के तात्त्विक विवेचन का उद्घाटन करना मतलब विषय की जानकारी देना प्रकाश डालना। इसी लिये आचार्य धनञ्जय ने नाट्यतत्त्वों के विषय में प्रातिस्विक विचार पर प्रकाश डाल कर जानकारी प्रस्तुत की है। स्वयं दशरूपककार प्रथमप्रकाश के प्रारम्भ में ही लिखते हैं कि-

उद्धृत्योद्धृत्य सारं यमखिलनिगमान्नाट्यवेदं विरञ्चि
ञ्चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठ:।
शर्वाणी लास्यमस्य प्रतिपदमपरं लक्ष्म क: कर्तुमीष्टे
नाट्यानां किन्तु किञ्चित्प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि॥ १

अर्थात् यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर आचार्यभरतमुनि के रसशास्त्र जो नाट्यशास्त्र कहा जाता है उसी के दुरूह कार्य को सरल सहज बोधगम्य शैली का आश्रय लेकर नाट्यतत्त्वों को संक्षेप में वर्णित किया गया जा रहा है। इस [1] तरह दशरूपक के चार प्रकाश नाट्यपरम्परा में नाट्यमहिमा को उजागर करने वाले लेम्प बल्व है जिसके प्रकाश से नाट्यतत्त्व आलोकित होकर सहृदय के अन्त:करण को आनन्द के सागर में अवगाहन कराने का कार्य करता है। इसमें विशेषकर रूपक के दश भेदों का और् उनके विभाजक तत्त्व वस्तु, नायक एवं रस के विषय में विशद् वर्णन प्राप्त है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने वेदों का सार लेकर नाट्यवेद की रचना की जिसका प्रयोग आचार्य भरमुनि ने किया जिसको शङ्कर ने ताण्डव एवं पार्वती के लास्य इसमें प्रदान किया, उसके लक्षण में प्रस्तुत किये जा रहे है रूपक का उद्देश्य आनन्द प्रदान करना ही है केवल व्युत्पत्तिमात्र नहीं। यह नाट्यप्रकाशक तत्त्व दर्शियों के लिये चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धि प्रदायक माना गया है। किसी भी अवस्था का यथार्थ अनुकरण ही नाट्य है। दृश्य होने के कारण रूप भी कहा गया है। नट में पात्र के आरोपण किये जाने से यह रूप भी माना जाता है रूप को रूपक मानक बना कर रूपक संज्ञा दी गई है।रूपक के दश भेद हैं- नाटक,प्रकरण,भाण,प्रहसन,डिम, व्यायोग,समवकार, वीथी अङ्क, और इहामृग।भावों मे आश्रय लेने वाला नृत्य होता है न कि रूपक। ताल एवं लयाश्रित नृत्य होता है। नृत्य और नृत्त मधुर एवं उद्धत के भेदों से दो प्रकार केत होते हैं। उनमे से प्रथम लास्य और द्वितीय ताण्डव कहा गया है। यहाँ रूपक के भेदक तत्त्वों पर चर्चा करते हैं। कथावस्तु, नायक, एवं रस मुख्य रूप से भेदक तत्त्व हैं। सर्वप्रथम कथावस्तु को बतलाते हैं कि यह दो प्रकार की होती है- मुख्य एवं प्रासंगिक कथावस्तु।

मुख्यकथावस्तु किसे कहा जाता है इस विषय पर यह कहा जाता है कि आधिकारिक कथावस्तु मुख्य होती है जो फलपर्यन्त नाटक में प्रसृत होती है। इसके बाद प्रासंगिक कथावस्तु मुख्यकथा के प्रयोजन की सिद्धि के लिये रहती है और प्रसंगवाश उसकी स्वार्थसिद्धि होती है । प्रासंगिक कथावस्तु के दो प्रकार हैं पताका एवं प्रकरी । आधिकारिककथा के साथ दूर तक चलने वाली कथा पताका है उअर् कुछ दूर तक ही चलने वाली प्रकरी है। जैसे रामायण में कथा आधिकारिक है सुग्रीव की कथा पताका है और श्रवणकुमार का प्रसंग प्रकरी है। प्रकरणगत कथा के जिस अंश में आने वाली कथा की सूचना रहती है उसे पताका स्थान कहा जाता है। कथावस्तु के इन तीन भेदों में से प्रत्येक प्रख्यात्, कपिल एवं मिश्र के भेद से तीन प्रकार का होता है। कथावस्तु का कार्य वा फल होता है। आनन्द के साथ-साथ धर्म-अर्थ व काम मे से सभी किसी एक वा किन्हीं दो की प्राप्ति । फल की सिद्धि के पाँच कारण होते हैं जिन्हे अर्थ प्रकृति कहते हैं। बीज बिन्दु -पताका-प्रकरी एवं कार्य ये पाअँच भेद हैं॥ फल का मुख्य कारण बीज है जो कि पहले थोडा रहकर भी बाद में अनेक प्रकार से फैलता है। अवान्तर कथा की समाप्ति पर जहाँ प्रधान कथा का विच्छेद होता है उसको जोडने वाली वस्तु बिन्दु कहलाती है पताका प्रकरी एवं कार्य को बतला ही चुके है हैं। यहाँ फलप्राप्ति के लिये प्रारब्ध कार्य की पाँच अवस्थाएं बतलाई गई है- आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियतापि एवं फलागम । फल के प्रति उत्सुकता आरम्भ कही जाती है। उसको प्राप्त करने के लिये किये जाने वाले उपाय प्रयत्न अथवा यत्न कहलाते हैं। उपाय एवं विघ्न दोनों के रहने से फल प्राप्ति अनिश्चित रहना प्राप्त्याशा है। विघ्नों के दूर होने से फल प्राप्ति निश्चित हो उसे नियतापि कहा जाता है। सम्पूर्ण रूप से फल की प्राप्ति फलागम कहलाती है। इन पञ्च अर्थप्रकृतियों एवं पञ्च अवस्थाओं के संयोग से मुख प्रतिमुख गर्भ विमर्श और उपसंहृत ये पञ्चसन्धि का निर्माण होता है । यहाँ यह प्रश्न उठता है कि सन्धि किसे माना जाये ? इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार है कि एक प्रयोजन से युक्त कथा का दूसरे प्रयोजन से सम्बन्धित होना सन्धि कहलाता है। ये सन्धि कथावस्तु के अन्दर एक दूसरे कथाबिन्दुओं को जोडे रखने का कार्य करती है जिससे कि कथा का रस भङ्ग एवं तारतम्य खण्डित न हो । पाँ च प्रकार की सन्धियों में बीज एवं आरम्भ के योग से मुखसन्धि का निर्माण होता है इसके बारह अङ्गभेद माने जाते हैं बिन्दु और प्रयत्न के मिल जाने से प्रतिमुख सन्धि की निर्मिति मान्य की जाती है, इस प्रतिमुख सन्धि में बीज कहीं दृश्य तो कहीं अदृश्य रूप में अङ्कुरित होता दिखलाई देता है इसके तेरह अङ्गभेद माने जाते हैं। पहले दिखलाई देकर फिर नष्ट हुए बीज का बराबर अनुसन्धान करना गर्भ सन्धि कहलाती है और यह प्राप्त्याशा अवस्था तो होती है लेकिन पताका हो भी सकती है और नही भी हो सकती है। इसके भी द्वादश अङ्गभेद माने जाते हैं। जबबीज फल की ओर अग्रसर होकर विस्तृत होता है तब अविमर्श सन्धि मानी जाती है। इसके भी तेरह अङ्गभेद माने जाते हैं । जहाँ सभी अर्थ फलप्राप्ति के लिये एअकत्रित होते हैं वह निर्वहण सन्धि कहलाती हैं जिसे उपसंहृति भी बोला जाता है। इसके चतुर्दश अङ्गभेद मान्य किये गये हैं। इसप्रकार चतुषष्ठि अङ्गों सहित सन्धियों के छह प्रकार के प्रयोजन होते हैं वे इसप्रकार हैं-१. वाञ्छित अर्थ का सम्पादन करना, २. गोपनीय वस्तुओं को छुपाना, ३. कहने योग्य बातों को प्रकाश में लाना, ४.दर्शको के मन में रूपक के प्रति रुचि उत्पन्न करना, ५.रूपक में आकर्षक चमत्कार उत्पन्न करना, और ६. कथावस्तु का विधिवत विस्तार करना । यहाँ अर्थप्रकृति और सन्धि की चर्चा के पश्चात् क्रम को विस्तार करते है कि नाट्य की कथावस्तु को दो भागो में विभाजित कर जो दर्शनीय हो उसे दृश्य और जो दिखलाने योग्य न हो और आवश्यक हो परन्तु त्याग नहीं किया जा सकता है। उसे सूच्य कहते हैं। रसहीन एवं अनुचित वस्तु को केवल सूचित कर देना चाहिए एवं सरस एव उदात्त भाग को प्रत्यक्ष प्रदर्शन करना चाहिए। कथावस्तु की सूचना को पाँच प्रकार से बतलानी चाहिए जिसे अर्थोपक्षेपक कहा जाता है । जो इस प्रकार हैं- विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार एवं प्रवेशक । घटी हुई तथा घटने की सूचना देने वाला एवं मध्यम स्तर के पात्र से प्रयुक्त विष्कम्भक कहा जाता है और यह अङ्क में प्रारम्भ में रहता है और वही यदि दो अङ्कों के मध्य मे रहे और नीच पात्रों से प्रयुक्त हो एअवं छूटी हुई बातों की सूचना दे तो वह प्रवेशक होता है। नेपथ्य में रहे पात्रों के द्वारा प्रयोजन को जानकारी प्रदान करना चूलिका कहलाता है। अङ्क के अन्त्य में आने वाले पात्र के द्वारा आगामी अङ्क के प्रारम्भ में आने वाले पात्र आदि की सूचना देना अङ्कास्य कहते है। एक वस्तु की कथा का दूसरे अङ्क तक लगातार चलना अङ्कावतार होता है । कथावस्तु के दृश्य भाग को अङ्क में ही प्रदर्शित कर देना चाहिये ।यहाँ इतना सब स्पष्ट हो जाने के बाद यह कह सकते है कि नाट्यधर्मानुसार कथावस्तु त्रिविध प्रकार की होती है। प्रकाश स्वगत और नियत । इन त्रिविध प्रकार की कथावस्तु में सभी को श्रवण योग्य जो कथा है वह प्रकाश मानी जाती है। जो कथा दूसरे को सुनाने योग्य नही है उसे स्वगत कहा जाता है और जो खास किसी को ही बतलायी जाये वह नियत कथावस्तु मानी जाती है।इसके भी द्विविध प्रकार बतलाये गये हैं - जनान्त और अपवारित । दो व्यक्तियों का गुप्तवार्तालाप जनान्तिक तथा दूसरी ओर मुह करकर कहना अपवारित है आकाश की ओर देखकर कुछ सुनने का अभिनय करके एकान्त में एकल वार्तालाप करना आकाशभाषित कहलाता है। कथा में नायक जिसे नेता कहा जाता है रूपक में नाक नायिका मुख्य किरदार होते हैं । यहाँ नेता के बारे में गुणविशेषताओं को स्थापित किया गया है नेता मधुर त्यागी चतुर प्रियवादी सर्वप्रिय चतुर प्रियवादी सर्वप्रिय शुचित युक्तिसंगत वार्तालाप करने वाला प्रख्यात वंश का स्थिरबुद्धि वाला युवक होता है जिसमें उत्साह स्मृति ज्ञान कला मान आदि से युक्त् शूर दृढ तेजस्वी एवं धार्मिक होना चाहिये। नेता ललित शान्त उद्धत एवं उदात्त भेद से चार प्रकार का होता है। उनमें से सदा कला में आसक्त निश्चित एवं सुखी धीरललित होता है। सामान्य गुणो से युक्त् ब्राह्मण आदि धीरशान्त होता है। महापराक्रमी गंभीर क्षमा से युक्त अपनी प्रशंसा न करने वाला स्थिर एवं दृढव्रत वाला धीरोदात्त होता है। घमण्ड ईर्ष्या आदि से युक्त माया छलकपट आदि में रत अहङ्कारी चञ्चल क्रूर झूठी बाते करने वाला नायक धीरोद्धत कहलाता है।

वह नायक जब दूसरी नायिका से अपहृत होता है तब प्रथम नायिका के प्रति तीन प्रकार का होता है- दक्षिण-शठ-धृष्ट। यदि प्रथम नायिका के प्रति सहृदय हो तो उसे दक्षिण माना गया है, गुपचुप तरीके से उसके प्रति अपराध करे तो तो शठ कहलाता है और दूसरी के साथ संयोग से चिह्नों के द्वारा स्पष्ट अङ्कित मूर्ख होता है। वही नायक केवल एक ही नायिका के प्रति आसक्त हो तो अनुकूल माना जाता है। पताका का नायक पीठमर्द कहलाता है और वह नायक गुणों से युक्त् होता है। भले ही मात्रा में कुछ न्यून हो । वह नायक का भक्त अनुचर होता है। नायक को गीत आदि सुनाने वाला विट कहलाता है और उअस्के साथ मजाक करने वाला विदूषक । नायक का विरोधी प्रतिनायक होता है। धीरोद्धत स्वाभाव का लुब्ध पापी व्यसनी एवं शत्रु प्रकृति का होता है। रूपक में नाय़क की विजय एवं प्रतिनायक की पराजय होना अत्यावश्यक माना गया है। नायक में शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य धैर्य तेज लालित्य एवं औदार्य आदि अष्ट सात्विक गुणों की उपस्थिति मानी जाती है। रूपक में नायक की घ्गुणविशेषताओ को यहाँ सूचित किया गया है। इसी प्रकार नायिका के भी भेद गुणविशेषताओं के आधार पर संसूचना दी गयी है। तीन प्रकार की नायिका स्वीया अन्या एवं साधारणी । स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा [2] (द.रू.२/१५) स्वीया के पुन: त्रिविध प्रकार हैं - मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा – मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक् ।[3] (वही. २/१५) मध्या एवं प्रगल्भा के भी धीरा अधीरा धीराधीरा करके तीन भेद होते हैं । उन तीन के भी ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा करके दो-दो भेद हो जाते है। इस प्रकार मध्या के छह एवं प्रगल्भा के छह भेद सब मिलाकर द्वादश भेद हो जाते हैं। इस प्रकार मुग्धा मध्या प्रगल्भा के समस्त प्रकारों को मिलाकर

तेरह प्रकार की नायिका भेद हो जाते है। धर्मशास्त्रीय मान्यतानुसार स्त्री के मरणोपरान्त त्रयोदशाकर्म विधान करने की मान्यता कदाचित् इन्हीं भेदों को मन में रखकर शास्त्रकारों ने निर्णय दिया गया होगा एसा अनुमान किया जा सकता है। अन्य स्त्री एवं कन्या भेद से अन्या दो प्रकार की है, अन्या स्त्री उसे कहा जाता है कि जो अन्य से विवाहित हो अन्या कहलाती है और उसे मुख्य रस में कभी भी चित्रित नहीं करनी चाहिये। कन्या तो स्वेच्छा से अङ्ग या अङ्गी रस में चित्रित की जा सकती है। जो सबके लिये उपलब्ध हो सकति है वह साधारणी है। वह धन से नाता रखती है और मूर्खों को पटाती फिरती है। इसे केवल प्रहसन में ही चित्रित किया जाता है अन्यत्र नाटक आदि में नहीं। इन नायिकाओ की आठ प्रकार की अवस्थाएँ होती है। - स्वाधीनपतिका जिसका पति सदैव साथ में ही अनुकूल होकर रहता हो वह स्वाधीनपतिका कहलाती है, वासकसज्ज जो प्रिय के आगमन की तैयारी के लिये सजधज कर बैठी हो उसे वासकसज्ज कहते हैं,विरहोत्कण्ठिता जो स्त्री प्रिय के आने में विलम्ब हो जाने पर खिअन्न होजती है उसे विरहोत्कण्ठिता कहते हैं,खण्डिता जो स्त्री अपने प्रिय से अन्य स्त्री के साथ सम्बन्ध होने की आशङ्का से ईर्ष्यावश कुण्ठाग्रस्त हो उसे खण्डिता कहा जाता है, कलहान्तरिता जो स्त्री प्रिय ल्के क्षमा याचना करने के उपरान्त भी अवहेलना कर बाद में पश्चात करे वह कलहान्तरिता मानी जाती है विप्रलब्धा जो निश्चित् स्थान में प्रिय के न आने पर अपमानित हो वह विप्रलब्धा कहलाती है, प्रोषितप्रिया जिसका पति कार्यवश अन्यत्र परदेश में रहे उसे प्रोषितप्रिया कहा जाता है, अभिसारिका जो स्त्री कामार्त होकर स्वयं प्रिय से मिलने जाये वह अभिसारिका कहलाती है। ये आठ प्रकार की नायिका की अवस्थाएँ बतलायी गयी है। दासी सखी भिक्षुकी आदि और स्वयं भी नायिका की दूतियाँ होती है। नायिका में बीस सात्विक अलङ्कार होते हैं, उनमें से भाव हाव हेला ये तीन शारीरिक शोभ कान्ति दीप्ति माधुर्य प्रगल्भता औदार्य धैर्य ये सात नसर्गिक लीला विला विच्छि विभ्रम किलकिञ्चित मोट्टायित कुट्टमित विव्वोक ललित विकृत ये दश स्वाभाविक भाव हैं-

यौवने सत्वजा: स्त्रीणामङ्कारास्तु विंशति:।
भावो हावश्च हेला त्रयस्तत्र शरीरजा:॥
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्त भावा अयत्नजा:।।
लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रम: किलकिंचितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं बिब्धोको ललितं तथा।
विहृतं चेति विज्ञेया दश भावा: स्वभावजा:॥
निर्विकारात्मकात्सत्त्वाद्भावस्तत्राद्यविक्रिया:।[4] (द.रू.२/३०-३३)

विकार से रहित मन में जो प्रथम विकार होता है वह भाव कहलाता है। नायक के अर्थ के चिन्तन में मित्र मन्त्री, स्वयं या दोनों होते है। धीरललित की सिद्धि मन्त्री के ऊपर निर्भर होता है और शेष का कहीं मन्त्री, कह स्वयं या कह दोनों के ऊपर। ऋत्विक पुरोहित आदि नायक के धर्मसहायक होते हैं। मित्र, कुमार, आरविक आदि नायक के दण्डसहायक होते हैं । उसके अन्त:पुर मे वर्षवर, किरात, मूक, वामन, म्लेच्छ, आभीर शकार आदि तत्तद कार्य के उपयोगी अनुचर होते हैं। उन सभी पात्रों के ज्येष्ठ, मध्यम एवं अधम भेद से त्रिविध प्रकार होते हैं-

ज्येष्ठमध्यममाधमत्वेन सर्वेषां च त्रिरूपता। [5] (द.रू.२/४५)।

इसी प्रकार रूपक में वृत्ति और भाषा का भी उल्लेख दशरूपककार ने सूचित किया है कि कौन पात्र किस भाषा में अपने संवाद को कहता है किस पात्र की वृत्ति कैसी होगी । मन में प्रश्न यह आता है कि वृत्ति किसे कहा जाता है? इसका उत्तर यह है कि नायक-नायिका के व्यापार को वृत्ति कहा जाता है । यह वृत्ति चार प्रकार की होती है- कैशिकी सात्वति आरभटी और भारती –

तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा, [6] २/४७

इनमें नृत्यगीत विलास आदि शृंगारचेष्टाओं से युक्त वृत्ति को कैशिकी के नाम से जाना जाता है और इसके चार अङ्ग प्रकार हैं-

.....तत्र कैशिकी।
गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदु: शृंगारचैष्टितै:॥
नर्मतत्सिफ़िञ्जतत्स्फोटतद्गर्भैश्चतुरङ्गिका॥ [7] (द.रू.२/४७-४८)
देशभाषाक्रियावेषलक्ष्मणा: स्यु: प्रवृत्तय:।
लोकादेवावगम्यैता यथौचित्यं प्रयोजयेत् ॥
पाठ्यं तु संस्कृतं नणामनीचानां कृतात्मनाम् ।
लिङ्गिनीनां महादेव्या मन्त्रिजावेश्ययो: क्वचित्॥
स्त्रीणां तु प्राकृतं प्राय: सौरसेन्यमधेषु च।
पिशाचात्यन्तनीचादौ पैशाच मागधं तथा ॥
यद्देशं नीचपात्रं यत्तद्देशं तस्य भाषितम् ।
कार्यश्च चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रम:॥ [8](द.रू.२/६३-६६)

धनञ्जय ने यह भी सूचित किया है कि नाटक में कुलीन कृतात्मा पुरुषों को संस्कृतभाषा में ही संवाद करने का विधान है, तपस्विनियों, महारानी, मन्त्रिपुत्री तथा वैश्याओं के सम्बन्ध में कहीं कहीं संस्कृत पाठ्य को भी सन्निवेशित किया जा सकता है प्राय: स्त्रीपात्र शौरसेनी या प्राकृत भाषा में ही अपने संवाद को अभिव्यक्त करने का विधान है।
नाटक में किस पात्र को किस प्रकार से सम्बोधित करना चाहिए इसके लिये भी दशरूपककार ने उल्लेख किया है-

भगवन्तो वैरैर्वाच्या विद्वद्देवर्षिअलिङ्गिन:।
विप्रामात्याग्रजाश्चार्या नटीसूत्रभृतौ मिथ:॥
रथी सूतेन चातुष्यमान्पूज्यै: शिष्यात्मजानुजा:।
वत्सेति तात: पूज्योऽपि सुगृहीताभिधस्तु तै॥
भावोऽनुगेन सूत्री च मार्षत्येतेन सोऽपि च।
देव: स्वामीति नृपतिभृत्यैर्भट्टेति चाधमै:।
आमन्त्रणीया: पतिवज्ज्येष्ठमध्याधमै: स्त्रिय:। [9] द.रू.२/६७-६९

श्रेष्ठपात्र के द्वारा विद्वान्, देवर्षि, तथा तपस्वी पात्र भगवन् आदि सम्बोधन् से सम्बोधित करे, विप्र अमात्य तथा गुरुजन या बडेभाई को आर्य सम्बोधन् देने के लिये निर्देश है। नटी व सूत्रधार परस्पर आर्य व आर्ये के सम्बोधन से सम्वाद करने के लिये संकेत है। सारथी अपने रथी वीर को आयुष्मान् तथा पूज्य लोग शिष्य, पुत्र या कनिष्ठ भ्राता आदि को भी आयुष्यमान् के द्वारा व्यवहार करे अथवा वत्स तथा तात सम्बोधन में व्यवहार करना चाहिये। पारिपार्श्विक सूत्रधार को भाव कहे तथा सूत्रधार पारिपार्श्विक को मारिष(मार्ष) के नाम से व्यवहार करे। सेवकगण को चाहिए कि राजा को देव अथवा स्वामी के सम्बोधन् के पुकारे इसी प्रकार अधम भृत्य उसे भट्टा(भर्त:) नाम से सम्बोधित करे। स्त्रियों के सम्बोधन् में विशेषताओं का उल्लेख हुआ है नाटक में स्त्रियों के सम्बोधन् को दशरूपककार ने इस प्रकार से वर्णित किया है-

समा हलेति प्रेष्या च हज्जे वेश्याऽज्जुका तथा ॥
कुट्टिन्यस्वेत्यनुगतै: पूज्या वा जरती जनै:।
विदूषकेण भवती राज्ञी चेटीति शब्द्यते ॥ [10] द. रू. २/७०-७१

इस सन्दर्भ में बतलाया गया है कि सखिया एक दूसरे को हला एवं सेविका हज्जे और वेश्या को अज्जुका के सम्बोधन् से सम्बोधित् करें। कुट्टिनी को लोग अम्ब तथा पूज्यवृद्धस्त्री को भी अम्ब सम्बोधन् से ही पुकारा जाये। विदूषक रानी व सेविका दोनों को भवति पद के सम्बोधन से व्यवहार करे। इसप्रकार दशरूपक में ही नहीं अपितु नाट्यशास्त्र साहित्यदर्पण आदि लक्षण ग्रन्थों में इसप्रकार नाट्योपयोगी अनुशासनव्यवस्था को चित्रित किया गया है जिसे नाट्यकार अपनी रचनाधर्मिता के पटल पर उपयोग कर नाट्यवैशिष्ट्य के सौन्दर्य से सामाजिक के अन्त:करण में रसचर्वणा का अलौकिक आनन्द उत्पन्न करने का उद्यम करे। दशरूपक में आचार्य धनञ्जय कहते है कि नायक की विभिन्न दशाओं के अनुरूप चेष्टा गुण उदाहरण सत्व तथा भाव का भी विशेष वर्णन कौन कर सकता है, जो भी यहाँ प्रस्तुत किया गया है वह नाट्य के प्रधान अध्वर्यु आचार्यभरत का ही अनुकरण मात्र है और

देवादिदेव महादेव नाट्य के मुख्य देवता हैं वही करने समर्थ सिद्ध है अन्य कोई नहीं। स्वयं दशरूपककार तृतीयप्रकाश के अन्त में लिखते है कि-

इत्थं विचिन्त्य दशरूपकलक्ष्ममार्गमालोक्य वस्तु परिभाव्य कविप्रबन्धान्।
कुर्यादयत्नवदलङ्कृतिभि: प्रबन्धं वाक्यैकमुदारमधुरै: स्फुटमन्दवृत्तै:॥ [11] ३/७६

अर्थात् रचनाकार को चाहिये कि दशरूपक के लक्षणों से चिह्नित मार्ग का सम्यक प्रकार से अवबोधन कर कथावस्तु का निरीक्षण करके तथा प्राचीन कवियों की रचनाओं प्रबन्धों का अनुशीलन कर स्वाभाविक अलङ्कारों से युक्त तथा प्रकट एवं सरल छन्द वाले उदार माधुर्यगुण के अर्थद्योतक वाक्यों के द्वारा प्रबन्ध या रूपकविधान करे। यह रचनाकार के लिये एक नवीन मार्ग को सूचित किया है। समग्र तृतीयप्रकाश नाटक के विविध प्रकारों पर प्रकाश डाला है जहाँ उपर्युक्त संकेत प्राप्त हुआ है। चतुर्थ प्रकाश में रस के विषय में पर्याप्त विवेचन किया गया है जहाँ रस स्वरूप भेद भाव विभाव आदि विवेचित है।दशरूपक के चार प्रकाश नाट्य की चतुर्दिक् परिक्रमा का तत्त्वार्थ उद्घाटित करने वाला अनुपम उपादेय ग्रन्थ है।

महत्त्व एवं प्रासङ्गिकता:-

नाट्यशास्त्र के आलोक में जो नाट्यतत्त्वों को प्रकाशित करने वाले शास्त्रीय ग्रन्थों का जो निर्माण हुआ है उनमें किसी ने रस तत्त्व को आधार बनाकर अपना रचना कौशल प्रदर्शित किया तो किसी ने नायक के स्वरूप और विशेषता को उद्घाटित किया तो किसी ने नायिका की विशेषताओं पर प्रकाश डाला, परन्तु धनञ्जय नें नाट्यशास्त्रीय विषयों को लोक के उपादेयता के क्रम में लेकर सरलसरस शैली में तात्त्विक विवेचना के साथ नाट्य के महनीय बिन्दुओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है जो आधुनिकजगत् में नाट्याभिनय कर्ताओं के लिये महत्त्व का विषय होकर युगानुरूप प्रासंगिकता का कारक सिद्ध होता है इसमें किसी प्रकार की कोई अतिशयोक्ति नहीं है। धनञ्जय ने चतुर्थप्रकाश के अन्तिम में स्पष्ट रूप में लिखा है कि नाट्यरस कवि की उदारभावाभिव्यक्ति है जो लोक में दुर्लभ है।

रम्यं जुगुप्सितमुदारमथापिनीचमुग्रं प्रसादि गहनं विकृतं च वस्तु।
यद्वाप्यवस्तु कविभावकभाव्यमानं तन्नास्ति यन्न रसभावमुपैति लोके॥ [12]

निष्कर्ष:-

इस आलेख में जो विचार प्रस्फुटित हुआ है वह नाट्य की लोकोपयोगिता के विषय में प्रासङ्गिकता को उजागर करता है और नाट्य के कुशीलवों के लिये एक दिग्दर्शन का कार्य करते हुए प्रातिस्विकमार्ग का उन्मोचन करेगा यही प्रस्तुत शोध-लेख का सारभूत प्रयोजन है॥ इति दिक्॥

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. दशरूपक १/४
2. दशरूपक २/१५
3. वही २/१५
4. दशरूपक २/३०-३३
5. वही २/४५
6. वही २/४७
7. वही २/४७-४८
8. दशरूपक २/६३-६६
9. वही २/६७-६९
10. वही २/७०-७१
11. दशरूपक ३/७६
12. दशरूपक ४/८५
13. नाट्यशास्त्र, चौखम्बा संस्कृत भवन वाराणसी
14. दशरूपक चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी सन् २०१५
15. संस्कृतसाहित्य का इतिहास,- वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
16. दशरूपक व्याख्याकार लोकमणिदहाल, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी